हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जनपद् के लोक वाद्यों की बनावट, निर्माण एवं वादन विधि

डॉ0 शिवराम
सहायक आचार्य (संगीत), राजकीय महाविद्यालय, बासा, हिमाचल प्रदेश, भारत।

Abstract

Folk music of Himachal Pradesh, one of the beautiful state of India, has a rich folk culture which is revealed through its folk instruments. Folk instruments have their own style of playing which is unique. These instruments have special shapes and construction methods. An effort has been made in this article to analyze the construction, design and playing methods of folk instruments of Sirmour region of Himachal Pradesh.

भूमिका

देवभूमि के नाम से प्रसिद्ध हिमाचल प्रदेश आज पूरे भारत में अपनी एक नई पहचान विकसित कर रहा है। हिमाचल की जनपद् ईकाईयों में एक सिरमौर जनपद् इस के दक्षिण–पूर्व में अवस्थित है और प्रदेश का शिरोमणी अथवा ताज कहलाता है। बहुमूल्य वनों से सुशोभित, खनिज सम्पदा से समृद्ध तथा नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर सिरमौर रियासती काल से ही विशिष्ट स्थान रखता है। शाब्दिक अर्थ में सिरमौर दो शब्दों के मेल से बना है – 'सिर' तथा 'मौड़'। मौड़ सिरमौरी लोक–भाषा में सिर पर लगाए जाने वाले मुकुट को कहते हैं। यही सिरमौड़ कालान्तर में बिगड़कर 'सरमोर' अथवा 'सिरमौर' बन गया। सम्प्रति 'सिरमौर' नाम से कोई स्थान विशेष नहीं मिलता। नामकरण के पीछे मत जो भी रहा हो किन्तु सिरमौर लोक–संस्कृति के क्षेत्र में पूरे हिमाचल का ताज है।

भौगोलिक रूप से सिरमौर जनपद् हिमाचल प्रदेश के दक्षिणी भाग में अवस्थित है। इस जनपद् की सीमाएँ उत्तर दिशा में प्रदेश के जिला शिमला तथा पश्चिम में जिला सोलन से लगती हैं जब कि इस के पूर्वी भाग में उत्तराखण्ड तथा दक्षिण में हरियाणा राज्य की सीमाएँ छूती हैं। सौन्दर्य से भरपूर सिरमौर में हिमाचल प्रदेश की सब से बड़ी प्राकृतिक झील रेणुका, ददाहु से दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह पवित्र झील ऋषि जमदग्नि की पत्नी तथा भगवान् परशुराम की माँ से सम्बन्धित है। एक ओर जहाँ इस की मनोहारी छटा को देखने के लिए पर्यटकों की भीड़ लगी रहती है, वहीं दूसरी ओर हजारों श्रद्धालु पूरे वर्ष इसमें आस्था की डूबकी लगाकर पुण्य कमाते हैं। विभिन्न ग्रंथों में वर्णित कुरु–जनपद् के समीप स्थित कुलिंद नाम से वर्णित सिरमौर की भूमि भारतीय संस्कृति का क्रीड़ा–स्थल रही है।

यहां के लोग धर्म–परायण, भोले–भाले तथा चरित्रशील हैं। इस जनपद् की लोक–संस्कृति पूरे प्रदेश में विशेष महत्व रखती है। विभिन्न धार्मिक एवं लौकिक आयोजनों पर गायन एवं नृत्य कला प्रेमी अपनी गायन एवं नृत्य कला की छटा बिखेरते हैं। सिरमौर जनपद् के विशिष्ट वाद्य यन्त्रों के संगीत के बिना, गायन एवं नृत्य न केवल अधूरा लगता है बल्कि असम्भव बन जाता है।

त्योहार तथा मेले यहां की लोक संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। सिरमौर जनपद् में वर्ष के बारह मासों में से हर मास कोई न कोई त्योहार अवश्य मनाया जाता है, इन त्योहारों की विशेषता यह है कि इनमें प्रत्येक त्योहार से लोक प्रचलित कोई न कोई पौराणिक घटनाएं जुड़ी हैं ऐसा लोगों का विश्वास है। इन त्योहारों में क्रमशः – चैत्रमास का त्योहार, बिशु–त्योहार, जेठोरा मोऊल, हरियाली, शोणयाली, कृष्ण जन्माष्टमी, पा०चोई, ओशाउजोरी आठोई, विजय दशमी, गरबड़े, नई–दीवाली तथा बूढ़ी दीवाली, माघी त्योहार, खोड़ा त्योहार, शिवरात्री तथा होली का त्योहार धूम–धाम से मनाए जाते हैं।

सिरमौर जनपद का लोक–संगीत

सिरमौर जनपद् में लोक संगीत का अपार भण्डार है। सिरमौरी लोक संगीत भूतकाल से लेकर वर्तमान काल तक समृद्ध शील है। यहां के जनमानस ने आज के बदलते हुए वैज्ञानिक परिवेश में अपनी लोक संगीत रूपी धरोहर को जीवित रखा हुआ है। इसने अपने परम्परागत लोक संगीत की रक्षा ही नहीं की है बल्कि इसे और परिष्कृत करने का भी प्रयत्न किया है। यहां के लोक संगीतज्ञों ने अपने प्रदेश ही नहीं बल्कि देश–विदेश के विभिन्न भागों में अपनी लोक–संस्कृति का उत्कृष्ट प्रदर्शन कर अपनी अमूल्य संस्कृति को चार चान्द लगाए हैं। रेणुका जी, शिलाई तथा राजगढ़ (पच्छाद) जैसे पिछड़े क्षेत्र के लोगों ने अपने परम्परागत गीतों एवं लोक–नृत्यों, नाटी, झूरी, रासा, हारूल और बूढ़ा इत्यादि लोक सांगीतिक परम्पराओं को सुरक्षित किया है।

यहां की स्त्रियां पुरुषों के साथ मनोरंजन तथा समारोहों में भी सम्मिलित होती रहती हैं। यहां विवाह तथा जन्मोत्सव आदि के गीत केवल स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीत होते हैं। इसी प्रकार कुछ विशेष प्रकार के लोक–गीत जैसे लोक–गाथाएं, हारें, देवी–देवताओं से सम्बन्धित गीत केवल पुरुषों द्वारा ही गाए जाते हैं। शेष लगभग सभी प्रकार के गीत, कथाएं तथा अन्य लोक सुभाषित स्त्रियों तथा पुरुषों द्वारा व्यक्तिगत अथवा सम्मिलित रूप से गाए एवं वर्णित किए जाते हैं।

सिरमौर जनपद् के लोक–नृत्यों तथा लोक गीतों में मुख्यतः अलग–अलग प्रकार के सिरमौरी वाद्य प्रयुक्त किए जाते हैं। इन नृत्यों में क्रमशः, नगाडा, दुमैनू (दमामा) छड़ी की ढोल, ढोलक, खंजरी, हुलकी, मंजीरा, छणका, रणसिंगा, करनाला तथा स्वर वाद्य के रूप में शहनाई तथा बांसुरी का प्रयोग भी देखने को मिलता है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में आज भी लोकसंगीत पुष्पित तथा पल्वित हो रहा है, आज भी लोक संगीत कृत्रिमता से दूर है। इसमें ताल यन्त्रों का प्रभुत्व विद्यमान है। लोक–नृत्यों में लोकवाद्यों की संगत के बिना नृत्य एवं गीत दोनों ही पंगु है। लोकगीत एवं लोक नृत्य दोनों में ही वाद्यों की आवश्यकता समान रूप से होती है। इन दोनों विधाओं में प्राण डालने की भूमिका वाद्य यन्त्र ही निभाते हैं।

सिरमौर के लोक वाद्य

सिरमौरी जन समुदाय जीवन संगीत के बहुमान्य आदि–प्रवर्तक भगवान शिव की सांगीतिक धरोहर को सुरक्षित रखे हुए हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण यहाँ का सरल लोक जीवन, मधुर कंठसंगीत, पारम्परिक लोक वाद्य व वाद्य संगीत तथा आकर्षक लास्य पूर्ण नृत्य। संगीत के ये तीनों पक्ष सिरमौरी लोक संगीत में उजागर हैं, और इनका मधुर आकर्षक, लालित्यपूर्ण तथा स्वाभाविक रूप यहां दृष्टिगोचर होता है। गीत एवं नृत्य की भांति ही सिरमौर का पारम्परिक वाद्य–संगीत भी सुप्रसिद्ध है। जन्म से मृत्युपर्यंत, जीवन के विभिन्न चरणों में हर्ष–विषाद के अवसरों तथा विभिन्न मान्यताओं व चुनौतियों के अनुरूप वाद्य वादन की परम्परा सिरमौरी वाद्य संगीत की व्यापकता व विविधता का परिचायक है।

सिरमौरी लोक–वाद्यों में सुषिर, अवनद्ध तथा घन, तीन प्रकार के पारम्परिक लोक वाद्य विद्यमान हैं। यहां ढोल, नगाड़ा दुमैनू, मंजीरा छैणा, रणसिंगा, करनाल, खंजरी, हुलकी, ढाकुली, कांस्य थाली, घड़ा, डमरू, छड़ियाल, भायण, शहनाई तथा बांसुरी आदि। इन लोक वाद्यों में बांसुरी, ढोलक और खंजरी वाद्यों को छोड़कर शेष वाद्य विवाह, पुत्र–जन्म, मेलों व जात्तरा जैसे विशेष अवसरों पर तथा देव स्थानों पर बजाए जाते हैं। इन विशेष अवसरों पर श्रृंगारिक लोक–संगीत में प्रयुक्त होने वाले ढोल, शहनाई व नगाड़ा आदि वाद्य भी सम्मिलित होते हैं। बांसुरी, खंजरी और ढोलक आदि वाद्य प्रायः श्रृंगारिक लोक–संगीत के वाद्य है।

सुषिर वाद्यों की बनावट, निर्माण एवं वादन विधि

निर्माण विधि एवं बनावट की परिधि में सिरमौर जनपद् के निम्नलिखित स्वरवाद्य अर्थात् सुषिर वाद्यों को रखा जा सकता है जिनमें मानव निर्मित लोक वाद्य तथा प्रकृति प्रदत लोक वाद्य शंख भी सम्मिलित है।

बांसुरी

इस वाद्य को स्थानीय भाषा में लोग बांसुरी और बांसुली के नाम से पुकारते हैं। यह सुषिर वाद्य कभी कभार जंगल में पशु चराने वाले ग्वाले तथा भेड़–बकरियां चराने वाले गड़रियों के मुख पर सुशोभित होकर सुन–सान जंगलों एवं गांव से दूर चरागाहों में संगीत मय घुनों से सगीत का रस पान कराता है। यह वाद्य एक प्राचीन वाद्य है जिसका वर्णन वेदों तथा पुराणों इत्यादि अनेक ग्रन्थों में मिलता है।

वर्तमान सयम में बांसुरी वाद्य का निर्माण पीतल, स्टील तथा चन्दन एवं चिकनाई युक्त बांस की नलिकाओं द्वारा होता है। सिरमौर में बांस की बनी हुई बांसुरी ही प्रचलित है। इसके बांस की लम्बाई लगभग बारह और पन्द्रह इंच तक रहती है तथा इसमें मुख के पास फूंक लगाने के लिए एक छिद्र तथा विभिन्न स्वरों की उत्पति के लिए छः और छिद्र विद्यमान रहते हैं इसका बांस मोटाई में लगभग आधा ईन्च तथा पौना इंच होता है। इसे ही सुखाकर इसे दोनों छोर से सीधा काटकर इसमें छेद डाल दिए जाते हैं इसी प्रकार बांसुरी का निर्माण कर लिया जाता है।

सिरमौरी लोक संगीत में इस वाद्य का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पर्वतीय क्षेत्र में गांव–गांव में रमणीक घाटियों में गूंजने वाली बांसुरी की ध्वनि बरबस ही श्रोताओं का मन मोह उसे मन्त्र मुग्ध कर देती है। लोक संगीत का वादक कलाकार विशिष्ट स्वर ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण केवल मात्र उन्हीं लोक गीतों का वादन अपने वादन में करते हैं जिन्हें वे खुद गाते हैं तथा उनका स्वर विस्तार लगभग एक ही सप्तक में रहता है। एक लोक–वादक कलाकार जिसे स्वर सम्बन्धित कोई विशेष ज्ञान नहीं होता किसी भी एक आवाज या ध्वनि को आधार मानकर शास्त्रीय संगीत की जटिलताओं को छोड़कर स्वतन्त्र मन से अपना वादन करता है। अतः

लोक संगीत में बांसुरी वादन की एक स्वतन्त्र विधि है। बांसुरी सिरमौर जनपद् में एक श्रृंगारिक लोक वाद्य है यह केवल मात्र लोक गीतों के गायन के साथ सहायक स्वर वाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

शहनाई

शहनाई सुषिर वाद्य श्रेणी का एक परिस्कृत वाद्य है। शहनाई वाद्य लोक संगीत का ही वाद्य नहीं अपितु हिन्दोस्तानी शास्त्रीय संगीत का भी एक प्रमुख वाद्य है। शहनाई वाद्य के निर्माण की प्रेरणा के स्रोत अनेक प्राचीन सुषिर वाद्य रहे हैं। आकार एवं बनावट की दृष्टि से यह वाद्य सुषिर वाद्य करनाल का लघु रूप दिखाई देता हैं शहनाई वाद्य की उत्पति में 'पोगा' वाद्य का भी एक विशेष योगदान है। पोगा एक पत्ते का वाद्य है जो कि एक विशेष किस्म के पत्ते से बनाया जाता है। इसके लिए पते को गोल लपेट लिया जाता है जो आकार में एक नलिका के आकार का होता है। इसके बारीक सीरे से फूंक कर ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की वनस्पतियों के पते को ओंठों से लगाकर भी ग्रामीण बाल एवं गडरिए शहनाई की ध्वनि के समान गीतों को बजाते हैं। शायद् इसी प्रकार की चेष्टाएं शहनाई वाद्य के निर्माण स्रोत रहे हों इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं हैं। शहनाई वाद्य को सिरमौर में 'सनाई' भी कहते हैं। इस वाद्य का निर्माण स्थानीय कारीगर विशेषकर शीषम, अखरोट, खैर तथा सानण आदि की लकड़ी को खराद पर चढ़ाकर विभिन्न प्रकार के लौह निर्मित, उपकरणों की सहायता से करते हैं। इसकी लम्बाई लगभग एक फुट से लेकर सवा फुट तक रखी जाती है। एक छोर जिसे वृताकार भाग कहते हैं इसके वृत का घेरा लगभग दस इंच तथा वृताकार भाग में एक कोने से दूसरे कोने की दूसरी लगभग सवा तीन इंच रखी जाती है।

लकड़ी की मोटाई लगभग पौना सेण्टी मीटर तथा जिस भाग पर बजाने के लिए रीड अथवा पत्ता लगाया जाता है उसकी मोटाई तीन ईन्च रखी जाती है। सिरमौरी शहनाई में स्वरोत्पति के लिए आठ छिद्र होते हैं। रीड लगाने के लिए एक ताम्बे अथवा पीतल की नली में धागे को लपेटकर सरकण्डे का पत्ता लगाया जाता है इसे शहनाई के साथ जोड़कर वायु पूरित की जाती है तथा ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इस तरह सिरमौर जनपद् के इस मांगलिक वाद्य को निर्मित किया जाता है। इसका अग्र भाग आगे को खुला हुआ तथा पीछे की ओर धीरे–धीरे तंग होता है और इस नलिका पर पत्ता या रीड स्थापित किया जाता है। इस प्रकार सर्वप्रथम पत्ता, नली और काठ की बनी हुई शहनाई आपस में जुड़ जाते हैं। इसके साथ जंजीर के साथ एक नुकीली कील जो प्रायः चान्दी अथवा पीतल की बनी होती है तथा लटकी रहती है। इस कील का प्रयोग नली के साथ रीड अथवा पत्ता बान्धने के लिए किया जाता है।

यह वाद्य बहुत ही मधुर तथा आकर्षक ध्वनि वाला वाद्य है। इसकी सुन्दर एवं मधुर ध्वनि वादक कलाकार की कठोर एवं सतत साधना का परिणाम है। वादन के लिए तैयार किए गए पते को सर्वप्रथम पानी में भिगो लिया जाता है। इसके पश्चात् वादन के समय भी वादक अपनी जिहवा से पते को लगातार गीला करता रहता है। इस वाद्य का वादन की दृष्टि से क्षेत्र विस्तार, शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, चित्र पट संगीत तथा लोक संगीत तक है। शहनाई के व्यापक क्षेत्र का आधार इसका विस्तृत स्वर विस्तार है। शहनाई में कुल आठ रन्ध्र हैं इसलिए इसका स्वर विस्तार मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर से तार सप्तक के पंचम स्वर तक रहता है। मुख्य तौर पर अग्रभाग के चार छिद्र खुले रहने पर मध्य सप्तक 'सा' तीन छिद्र खुले रहने पर मन्द्र सप्तक निषाद इसी प्रकार छिद्र खुले रहने पर 'घ' एक छिद्र खुला रहने पर पंचम और सब छिद्र बन्द रहने पर 'म' स्वर की उत्पति होती है। इसी प्रकार षड़ज के पश्चात रिषभ, गन्धार, मध्यम तथा पिछले भाग के छिद्र खोलने पर पंचम स्वर की उत्पति होती है इसी छिद्र को खुला रखते हुए फिर अग्रभाग से छिद्र खोलते हुए धैवत, निषाद् तथा तार षड़ज आदि स्वरों की उत्पति होती है। छिद्र को आधा खोलने पर कोमल–स्वरों की ध्वनि उत्पन्न होती है। शहनाई वाद्य का वादन मांगलिक अवसर, देव पूजा तथा विवाह शादियों आदि में समान रूप से किया जाता है। इस वाद्य को समाज के निम्न वर्ग के लोग – तूरी, ढाकी, तथा लोहार विशेषकर बजाते हैं।

करनाल

'करनाल' वाद्य सिरमौर जनपद् का एक प्राचीन लोक वाद्य है। इस वाद्य के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं, लेकिन अनेक प्राचीन मन्दिरों में यह वाद्य अपनी पूर्ववत स्थिति में हमें मिलता है। करनाल शब्द दो शब्दों का संयोग है कर+नाल। कर का अर्थ है हाथ और नाल का अर्थ खोखली धातु का टुकड़ा। करनाल वाद्य से मिलते–जुलते एक वाद्य का उल्लेख संगीतसार ग्रन्थ में किया गया है इस वाद्य को भुपाड़ो कहा जाता था इस विषय पर डॉ0 लाल मणी मिश्र के अनुसार, ''इसका आकार तीन हाथ लम्बा होता था। फूंक कर बजाया जाने वाला, होने के

कारण इसका भीतर से खोखला होना स्वभाविक था। इसका मुख धतूरे के फूल के आकार का होता था। इसके मध्य में दो छिद्र होते थे। ''संगीत सार'' के अनुसार इसे भूपाड़ों कहने का प्रचार था।''

करनाल वाद्य का निर्माण धातुओं से किया जाता है। करनाल वाद्य का निर्माण पीतल, एल्यूमिनियम तथा ताम्बा आदि धातुओं से किया जाता है। प्राचीन समय में यह वाद्य मन्दिरों में मन्नत के रूप में चढ़ाए गए चान्दी से बनाया जाता था। इसके निर्माण में लगभग डेढ़ तथा दो किलो के वजन का चान्दी लगता था। वर्तमान समय में करनाल वाद्य का निर्माण मात्र पीतल से ही किया जाता है इसे स्थानीय कारीगर लोहारों एवं ठठियारों द्वारा बनाया जाता है। इसकी बनावट अंग्रेजी भाषा के वर्ण 'ल' के समान होती है। अन्दर का भाग खोखला होता है। अग्र भाग खुला हुआ तथा मुख रन्ध्र तंग होता है, बाह्य आकार को देखने से ज्ञात होता है कि यह वाद्य मुख रन्ध्र से अग्रभाग की ओर खुला होता है। इसका अग्रभाग बीस से तीस सेण्टी मीटर खुला तथा वृताकार होता है। यह वाद्य अन्दर से खोखला होता है। यह दो भागों में खुल जाता है बीच में जोड़ के भाग को ध्याना कहते हैं। 'ध्याना' के अन्दर एक ताम्बे की नलिका होती है जो इसके वादन का मुख्य रन्ध्र होता है। मुख्य रन्ध्र पर एक गोलाकार भाग होता है जिसे स्थानीय भाषा में 'चाक' कहते हैं। चाक के मध्य भाग में लगभग दो सूत मोटा छिद्र होता है। इस छिद्र द्वारा मुख से फूंक लगाने से ध्वनि उत्पन्न होती है।

करनाल वाद्य के वादन विधि की अपनी विशेषता है। सिरमौर जनपद् में इसका वादन लय के साथ दो अलग–अलग स्वरों में होता है। इसके वादन का आनन्द और भी बढ़ जाता है जब इसका वादन मींड युक्त होकर प्रथम स्वर जिसे षड़ज कहा जा सकता है और मींड लगभग धैवत से षड़ज तक होती है फिर कुछ देर रूक कर अगले पंचम स्वर को लिया जाता है और यह प्रक्रिया ताल बद्ध रूप में होती है। इसमें धा ऽऽऽऽ कुं रूं ऽऽऽऽ धा धा धा कुं रू धां कु रू इस प्रकार ताल वाद्यों के वादन के साथ इसकी ध्वनि की जाती है। यह वाद्य मांगलिक कार्यों के साथ–साथ देव पूजा, देव यात्रा और मृत व्यक्ति की शव यात्रा के साथ भी सिरमौर जनपद् में कभी–कभी सुनने को मिलता है। ''इस वाद्य को लोहार तथा तूरी जाति के लोग बजाते हैं। इसके वादन के लिए दमदार सांस की आवश्यकता रहती है।''

रणसिंगा

रणसिंगा ऐतिहासिक युद्ध वाद्य है। मात्र सिरमौर जनपद् ही नहीं बल्कि समूचे भारतवर्ष में यह वाद्य बजाया जाता है। बनावट की दृष्टि से यह वाद्य संस्कृत भाषा में प्रयुक्त अवग्रह ऽ की तरह है। अग्र भाग क्रमशः धीरे–धीरे खुला हुआ होता है जब कि मुख रन्ध्र अपेक्षाकृत छोटा होता है। यह वाद्य दो भागों में विभक्त रहता है। जिससे यह कम स्थान घेरता है।

रणसिंगा वाद्य का निर्माण ताम्बा धातु से होता है तथा पीतल भी इसके निर्माण में मिश्रित रूप में प्रयोग की जाती है। इस वाद्य का निर्माण धातु की चादर मोड़कर किया जाता है। भीतरी भाग खोखला तथा वाह्य भाग को कलात्मक रूप में ढाला जाता है। इसका वादन कभी लय के साथ, कभी स्वतन्त्र रूप से किया जाता है। इसका भार लगभग दो और तीन किलोग्राम का होता है।

इस वाद्य की वादन विधि करनाल वाद्य से मिलती है। वादन के लिए रणसिंगा वाद्य के पतले छोर को होठों के उपर स्थापित किया जाता है इसमें बांए तथा दाहिने दोनों हाथों से पकड़ने के लिए सहयोग रहता है। वाद्य में जोरदार फूंक लगाकर इसमें कम्पन से ध्वनि उत्पन्न की जाती है। मुख्यतः हवा के वेग द्वारा ही इस क्रिया को किया जाता है। इसके वादन का मुख्य उद्देश्य वीर रस का संचार करना और वाद्य वृन्द में उत्साह भरना है। यह वाद्य मांगलिक कार्यों, विवाह, देवयात्रा तथा मेलों में बजाया जाता है।

इसकी जोरदार ध्वनि दूर–दूर तक सुनाई देती है यह मांगलिक कार्यों की सूचना देता है। कुशल वादक लय के साथ सा, ग पा, सां आदि की ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इसमें अलग–अलग स्वर की ध्वनि उत्पन्न करने के लिए कोई भी रीड नहीं होते फिर भी वादक फूंक लगाने की तकनीक से ही यह अलग–अलग स्वर उत्पन्न करते हैं।

शंख

शंख वाद्य लोक संस्कृति से जुड़ा हुआ वाद्य है। यह ऐसा वाद्य है जिसका वादन मन्दिर में पूजा के लिए सुबह और शाम दोनों समय होता है। इसका वादन मंगल कार्यों और अमंगल कार्य अर्थात जन्म उत्सव तथा शव यात्रा के साथ समान रूप से होता है। शंख वाद्य सामुद्रिक जीव का ढांचा है। समुद्रोद्भवजन्तु विशेषः अर्थात् समुद्र से उत्पन्न

जन्तु विशेष। अच्छा शंख हल्के गुलाबी रंग का या बिल्कुल सफेद होता है। गोलाई, चिकनापन और निर्मलता, शंख के तीन गुण हैं – खुरदरे, बहुत भारी तथा बेड़ौल शंख निकृष्ट माने जाते हैं। शंख के दो प्रमुख भेद हैं, वामावर्त और दक्षिणावर्त प्रायः वामावर्त शंख ही वादन में प्रयुकत होता है। शंख का दर्शन यात्रा के समय मंगल सूचक माना जाता है तथा इसकी मंगल ध्वनि संक्रामक रोगों के किटाणु नष्ट करती है। शंख वाद्य युद्ध का प्रारम्भ करने की तथा समाप्त करने की घोषणा का संकेत करने वाला वाद्य रहा है। लोक संस्कृति में यह वाद्य अपना अस्तित्व बराबर बनाए हुए है।

दाहिने हाथ की मुठ्ठी से बाएं हाथ के अंगूठे को पकड़कर एवं बाएं हाथ की उंगलियों को सटाकर सामने फैलाकर उनके द्वारा दाहिने हाथ के सामने फैले अंगूठे को स्पर्श करने से शंख–मुद्रा बनती है। हिन्दू धर्म के सभी मंगल कार्यों में शंख – ध्वनि परम मंगलमय समझी जाती है। सिरमौर जनपद् में वर्तमान समय में शंख का वादन मन्दिरों में देव पूजा तथा मृतक की शव यात्रा के साथ किया जाता है। इसकी ध्वनि की विविधता से मंगल और अमंगल की सूचना मिल जाती है।

मृत्यु के समय केवल एक स्वर का वादन होता है जैसे सा ..... तथा मंगल कार्य एवं पूजा के समय सा ..... सां मध्य सा तथा तार सां दो स्वरों की ध्वनि उत्पन्न की जाती है।

अवनद्ध वाद्यों की बनावट, निर्माण एवं वादन विधि

सिरमौर जनपद् के अवनद्ध वाद्यों की श्रेणी के लोक वाद्यों में सिरमौर जनपद् का ढोल, दमामा, नगाड़ा (दुमैनू) हुलकी, ढाकुली, डमरू, ढोलक आदि प्रमुख लोक वाद्य सम्मिलित हैं जिनका समयानुसार वाद्य वादन होता रहता है। इन लोक वाद्यों की निर्माण विधि तथा वादन विधि का ढंग पारम्परिक है जिसे कि पीढ़ी दर पीढ़ी सिरमौरी समाज के लोग अपनाते चले आ रहे हैं।

ढोल

ढोल की बनावट बिल्कुल ढोलक वाद्य की तरह ही है। इसका आकार ढोलक से बड़ा होता है। ढोल वाद्य के निर्माण में ताम्बा तथा पीतल आदि धातुओं का प्रयोग होता है। सिरमौर में सामान्यतः लगभग 22 ईन्च की पुड़ी वाले ढोल मौजूद हैं। इसके दोनों तरफ बकरे की खाल की पुड़ी चढ़ाई जाती है। तथा बद्दी के स्थान पर सूत की रसी को प्रयोग में लाया जाता है तथा स्वर करने के लिए पीतल तथा स्टील के छल्ले इसमें चढ़ा दिए जाते हैं। दांए पूड़े में अन्दर से ढोलक की बांई पूड़ी की भान्ति धूप का लेप चढ़ा दिया जाता है। इस तरह इस वाद्य के निर्माण की क्रिया वाद्य निर्माता पूरी करते हैं और ढोल वाद्य वादन के लिए तैयार हो जाता है।

''स्थानीय वाद्य वादक ढोल के कमर में लगी हुई लम्बी रसी को अपने बांए कन्धे पर लटकाकर दांई पूड़ी पर बजाने के लिए एक विशेष प्रकार की लकड़ी की छड़ी जिसे स्थानीय भाषा में 'भांईटा' कहते हैं यह एक ओर से अर्ध चन्द्रकार मुड़ी हुई होती है इसकी लम्बाई लगभग तेरह ईन्च होती है इसे दाहिने हाथ से पकड़कर सामने वाली पुड़ी पर वादन का आघात करते हैं तथा दूसरी पूड़ी पर बांए हाथ का सहारा लगाया जाता है। ढोल के वादन का प्रयोग विवाह, जातर, लोक नाट्य ''करियाला'' तथा ठोडा नृत्य आदि में बखूबी किया जाता है। ढोल वादक को ढोलिया कहते हैं। इस वाद्य में पाटाक्षर ढें ढें आदि सुने जा सकते हैं। ढोल वादक वादन के समय अपने वाद्य पर विविध लयकारियों को बजाने में कोई कसर नहीं छोड़ता। ढोल की संगत नगाड़ा तथा दमामा वाद्यों के साथ तथा शहनाई की धुन के साथ मन मोहक लगती है।''

दमामा

दमामा नगाड़ा प्रजाति का वाद्य है यह नगाड़ा वाद्य के आकार में छोटा होता है सिरमौर में इसे 'दुमैनू' के नाम से भी जानते हैं। यह वाद्य अर्धकुम्भाकार का होता हैं ''सिरमौर जनपद् में लोहे का नगाड़ा अधिक प्रचलित है इसलिए दमामा वाद्य का निर्माण भी नगाड़ा की भान्ति ही किया जाता है कटोरे की आकृति के इस वाद्य के उपर भैंस के खाल की पूड़ी चढ़ाई जाती है तथा पूड़ी को कसकर बान्धने के लिए पशु के खाल की ही डोरी बनाई जाती है जिसे 'बेत' कहते हैं तथा बड़ी खुबसूरती से इसे घुमा–घुमाकर इसमें पूड़ी को चढ़ाया जाता है तथा इसकी कमर में विशेष रूप से एक गजरे की भान्ति सजावट के रूप में बेत की सहायता से सजावट के लिए गोलाई में बुनाव किया जाता है जिसे कमर द्वाल कहते हैं। इस तरह से इसे निर्मित किया जात है।''

इस वाद्य के वादन के लिए दो छड़ियों का प्रयोग किया जाता है। इसका वादन वादक जमीन पर रखकर अथवा गले में रस्सी की सहायता से लटकाकर दो डण्डियों से करता है। दीपावली, मशराली के अवसर पर, लिम्बोर में, हेला लगाते समय, फसल की गुड़ाई तथा जातर के अवसर पर दमामा वाद्य का खूब वादन किया जाता है। ''दमामा वाद्य का वादन नगाड़ा वाद्य के वादन के साथ किया जाता है। इसे केवल तूरी तथा ढाकी एवं लोहार जाती के लोग ही बजाते हैं।'' इसे स्वर करने के लिए ऊँचा चढ़ाने के लिए घास जलाकर आग के आगे पूड़ी को लगाकर इसका स्वर ऊँचा किया जाता है।

नगाड़ा

नगाड़ा वाद्य को स्थानीय भाषा में 'नगारा' भी कहा जाता है यह प्राचीन वाद्यों की श्रेणी का लोक वाद्य है। यह प्राचीन वाद्यों भेरी तथा दुंदुंभी का पर्याय है। बड़े–बड़े आकृति के नगाड़े आज भी प्राचीन मन्दिरों के नगार खाने में देखे जा सकते हैं। जिन्हें सुबह–शाम मन्दिर में पूजा के समय बजाया जाता है। ''नगाड़ा वाद्य के वादक कलाकार को 'नगारची' के नाम से सम्बोधित करते हैं। इसकी निर्माण विधि पूरी तरह दमामा वाद्य के समान है। तथा बनावट भी दमामा की ही भान्ति है। इसके आधार में एक रन्ध्र होता है जिसमें से इसमें देसी, घी, सरसों का तेल तथा लस्सी आदि इस वाद्य में डाल देते हैं। इससे इसमें ध्वनि की गूंज अधिक बढ़ जाती है। नगाड़ा तथा दमामा दोनों वाद्यों का संयुक्त वादन, वादक दो डण्डियों से करता है जब दोनों वाद्यों को इक्ट्ठा रखकर बजाते हैं तब इसे नगार जोड़ी कहा जाता है।''

नगाड़ा तथा दमामा का संयुक्त वादन तबला वादन के समान दायां एवं बांया की भान्ति मिलाकर बजाते हैं। कुशल वादक जो वादन में पारंगत हैं इसमें विभिन्न प्रकार के लोक तालों तथा लयकारियों से लोगों का खूब मनोरंजन करते हैं। सिरमौर जनपद् के प्राचीन मन्दिरों के भण्डार में नगार जोड़ी सुरक्षित पाई जाती है। प्राचीन मान्यतानुसार, युद्ध के समय नगारा वाद्य पर दूर–दूर तक सुनाई देने वाली जोरदार ध्वनि इस बात का संकेत देती थी कि, अमुक स्थान पर लोग एकत्रित हो जाएं जहां नगाड़े की ध्वनि बज रही है। आज भी युद्ध की एक झलक ठोडा नृत्य में देखी जा सकती है।

हुलकी

हुलकी वाद्य डमरू के आकार का सिरमौरी लोक वाद्य है जिसे नाट्य शास्त्र में वर्णित 'हुडुक्का' वाद्य के सदृश माना जा सकता है। 'हुलकी' सिरमौरी भाषा में कहा जाता है। इस वाद्य के निर्माण में लकड़ी, चमड़ा तथा डोरी की प्रमुख भूमिका रहती है। ''हुलकी वाद्य का निमार्ण 'आम' की लकड़ी से किया जाता है। इसकी आकृति बिल्कुल डमरू की तरह होती है लेकिन इसका आकार बड़ा होता है। इसकी लम्बाई लगभग अठारह ईन्च तथा इसके दोनों ओर भैंस की अमाशय की पुड़ियां बनाकर चढ़ाई जाती हैं। इस वाद्य में दोनों पुड़िया लगभग दस और आठ ईन्च तक की होती है उन्हें सूत की रस्सी से इस पर मढ़ दिया जाता है।''

हुलकी वाद्य के बीच वाले घंसे हुए भाग के बाहर से इसकी कमर को रस्सी से कस लिया जाता है तथा उसी रस्सी को वादक अपने बांए कन्धे पर रखे हुए तथा बाएं हाथ से वाद्य को खींचता है और दाहिने हाथ की थाप तथा उंगलियों से इस का वादन करता है। इसे खींचकर और ढीलाकर बजाने से विशेष प्रकार की गूँज पैदा होती है। इसके वादन के लिए दोनों हाथों में समरूपता का होना आवयश्क है। इस वाद्य का वादन बुढ़ा अथवा बुढ़ू गायन तथा वीरगाथाओं के गायन के साथ किया जाता है। हुलकी वादक वादन के समय तरह–तरह की नृत्य मुद्राओं से प्रत्यक्ष दर्शियों के मन को मोह लेता है। सिरमौर जनपद् में हुलकी वादक प्रायः निम्न वर्ग के लोग होते हैं जिन्हें ''हुलकोइया'' या ''हुलकोऊ'' कहते हैं। दिवाली के समय रासा नृत्य के साथ इस वाद्य के वादन का काफी आनन्द उठाया जाता है।

ढाकुली

ठाकुली वाद्य भी डमरू प्रजाति का वाद्य है इसका आकार बिल्कुल डमरू से मिलता है। ''इस वाद्य के निर्माण में लकड़ी तथा चमड़े का प्रयोग होता है इसकी उत्पति के सम्बन्ध में स्थानीय कलाकार इसे 'ढाकी' जाति से सम्बन्धित मानते हैं। लोगों का कहना है कि यह ढाकी की थी इसलिए इसे 'ढाकुली' कहते हैं। इसकी दोनों पुड़ियां बकरे की खाल की होती है। इस वाद्य की लम्बाई आठ से दस ईच

तक की होती है तथा इसमें पांच ईन्च की पुड़ीयां सूत की डोरी की सहायता से चढ़ाई जाती है।''

इस वाद्य का वादन डोम जाति के लोग करते हैं तथा चैत मास में गाँव–गाँव घूमकर जीणीआ लोकगाथा के गायन के साथ इस वाद्य को बजाते हैं। इसे नीचे बैठकर दोनों पैरों के उपर रखा जाता है तथा दोनों तरफ छः ईच की अर्धचन्द्राकार मुड़ी हुई छड़ियों से इसका वादन किया जाता है इस वाद्य से डिंऊ ऽऽ डिं ऊँ के पाटाक्षरों की ध्वनि निकलती है। इस वाद्य का प्रचार बहुत ही कम है।

डमरू

सिरमौरी लोक वाद्यों में डमरू वाद्य की भी अपनी पहचान हैं आध्यात्मिक आधार पर या धार्मिक तथ्यों के आधार पर यह माना जाता है कि डमरू प्राचीनतम् वाद्य यन्त्र है इसका सम्बन्ध आदि देव भगवान शंकर से माना जाता है। भगवान शंकर के वाद्य डमरू को हिन्दू धर्म ग्रन्थों में आध्यात्मिक महत्व प्रदान किया गया है। ''डमरू भगवान शंकर का प्रमुख वाद्य था। नन्दिकेश्वर के अनुसार डमरू की ध्वनि से ही सांगीतिक स्वरों एवं तालों की उत्पति हुई है।'' सिरमौर जनपद् में डमरू वाद्य का निर्माण काष्ठ तथा चर्म द्वारा किया जाता है। इस वाद्य को बकरे की खाल से मढ़ा जाता है इसकी लम्बाई लगभग बारह ईन्च तथा बीच का भाग अन्दर की ओर धंसा हुआ होता है। इसके दोनों ओर पांच–पांच ईन्च की पुड़ियां सूत की डोरी से चढ़ाई जाती हैं।

''डमरू वाद्य का वादन गुग्गा पीर के गीतों के साथ किया जाता है वादक कलाकार इसे बाएं हाथ की हथेली से पकड़कर दाहिने हाथ में एक डण्डी पकड़कर उससे इसका वादन करता है तथा बाएं हाथ की पकड़ ढीली करने और कसकर पकड़ने की क्रिया से इसमें ऊँचा एवं नीचा स्वर उत्पन्न किया जाता है इसके वादन में डंऊ डंऊ ऊ टा आदि पाटाक्षर बजाए जाते हैं।''

ढोलक

''ढोलक वाद्य को सिरमौर में 'ढोल' अथवा 'ढोलकी' आदि नामों से जानते हैं। ढोल के आधार पर ही इस वाद्य का निर्माण हुआ है। तकनीकी दृष्टि से ढोलक ढोल का ही एक प्रारूप है, तथापि लोक संगीत में इसका प्रयोग इसकी बनावट तथा निर्माण सामग्री इसे कुछ हद तक एक अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी बनावट के अनुरूप ही इसकी ध्वनि भी ढोल की अपेक्षा भिन्न है। इस वाद्य के निर्माण में काष्ठ, चर्म तथा सूत की रस्सी आदि सामग्री प्रयुक्त की जाती है। इस वाद्य में शीशम, खैर तथा आम की लकड़ी और बकरे तथा बकरी की खाल का प्रयोग किया जाता है। चमड़े की पुड़ियां सूत की डोरी की सहायता से इस वाद्य पर मढ़ी जाती हैं। स्वर को ऊँचा करने के लिए डोरी में स्टील अथवा पीतल के छल्ले डाले जाते हैं आम ढोलक लगभग बाईस इंच लम्बी तथा दोनों ओर क्रमशः वांयी ओर की पुड़ी नौ ईंच तथा दांई पुड़ी साढे सात ईंच की रहती है। इस प्रकार से ढोलक वाद्य में बाईं ओर की पूड़ी में भीतर की ओर धूप का लेप किया जाता है जिसे टिक्कड़ी कहते हैं।''

ढोलक वाद्य दोनों हाथों की हथेलियों तथा दांए हाथ की तरफ ऊंगलियों का ज्यादा काम तथा वांई तरफ हथेली और खुली थाप का ज्यादा काम रहता हैं ढोलक का वादन गोद में रखकर, गले में लटकाकर, घुटनों के नीचे रखकर या जमीन पर रखकर दोनों हाथों से किया जाता है। यह वाद्य गीत, भजन, लोक गीत, महिला संगीत तथा मंच के कार्यक्रमों में भी समान रूप से शोभायमान रहता है। सिरमौर में अधिकांश लोग नृत्य के साथ इसी वाद्य का वादन करते हैं।

घन वाद्यों की बनावट, निर्माण एवं वादन विधि

घन वाद्यों की श्रेणी में सिरमौरी क्षेत्र में घण्टा, घड़ियाल, थाली, चिमटा, घड़ा आदि प्रमुख लोक वाद्य हैं जिनका वादन यहां के स्थानीय बाशिन्दे करते हैं और ये लोक वाद्य यहां के वाद्य परिवार के सदस्य हैं। इनका वादन यथा समय होता रहता है।

घण्टा

घण्टा कांस्यादि धातु निर्मित घन वाद्य है। इस वाद्य का प्रयोग न केवल सिरमौर अपितु सम्पूर्ण भारत वर्ष के मन्दिरों में होता है। मन्दिरों के मुख्य द्वार पर घण्टा लगाने की प्रथा प्रचीन काल से है। यह वाद्य किसी न किसी रूप में धार्मिक आस्थाओं से जुड़ा

हुआ है। प्राचीन मिश्र, ग्रीक, रोम सहित यूरोपियन देशों में भी इसका प्रचार था। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि यह वाद्य सार्वभौमिक वाद्य है। धर्म ग्रन्थों में इसका बहुत वर्णन मिलता है।

इस वाद्य के निर्माण के लिए पीतल, लोहा, ताम्बा, जस्ता, चान्दी इत्यादि मिश्रित रूप से ये सभी धातुएं प्रयुक्त की जाती हैं। घण्टा निर्माण के लिए धातुओं को गर्म कर पिघला दिया जाता है तथा पूरी सामग्री को निश्चित आकार देने के लिए सांचे में ढाला जाता है। अग्रभाग बन जाने के पश्चात् इसको लटकाने वाला भाग अर्थात् हत्था जिसकी सहायता से इसे लटकाते हैं जोड़ा जाता है इसके अन्दर ध्वनि उत्पन्न करने वाला भाग लोहे का बनाया जाता है। जिसे हाथ से पकड़कर बार–बार इसके मुख पर प्रहार कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। घंटे के सामान्य आकार को घंटा तथा विशाल घण्टे को 'कल्पतरू' कहा जाता है। इसके बिल्कुल छोटे आकार को घण्टी कहते हैं। सामान्यतयः लोक परम्परा में प्रचलित व्यवहार के अनुरूप देव–दर्शन से पूर्व तीन बार तथा परिक्रमा के पश्चात् एक बार बजाने की विधि को अपनाया जाता है।

घड़ियाल

घड़ियाल वाद्य घन वाद्य वर्ग का एक प्राचीन वाद्य है। प्राचीन समय में इस वाद्य का प्रयोग समय सूचना हेतू भी किया जाता था जिसके कारण शायद इसका नामकरण 'घड़ियाल' पड़ा अर्थात् जो घड़ी–घड़ी की सूचना दे। आधुनिक समय में घड़ियाल वाद्य का प्रयोग देव पूजा के समय लय के साथ–साथ समान लय में किया जाता है।

इस वाद्य का निर्माण कांस्य, ताम्र, पीतल आदि मिश्रित धातुओं से किया जाता है। इन धातुओं को पिघला कर इनको तरल रूप प्रदान कर घोल को आकार में ढाला जाता है। इसके पश्चात एक कोने में छिद्र कर इसमें डोरी डाल कर इसे हाथ में पकड़ने योग्य बनाया जाता है। इसके वादन के लिए एक लकड़ी के बने हथौड़ी नुमा छड़ी से प्रहार किया जाता है जिससे कि मधुर ध्वनि का संचार होता है। यह वाद्य देव पूजा में भक्तिमय वातावरण की सृष्टि करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सिरमौर जनपद् में इस वाद्य को स्थानीय भाषा में 'भायण' के नाम से भी पुकारते हैं।

थाली

मानव ने जब प्राचीन समय में मिट्टी के बर्तनों के पश्चात धातु के बर्तन निर्माण की कला सीखी तब सामाजिक परिवेश के अनुसार भिन्न–भिन्न ध्वनि प्रयोगों के सन्दर्भ में इसका भी प्रयोग किया जो अधिक रूचिकर और कर्ण प्रिय लगा उसे अपने गीत संगीत में शामिल कर लिया, कांस्य निर्मित थाली भी इसी प्रकार वादन क्रिया में शामिल हुई। थाली की संरचना कांसा धातु से की जाती है इसका आकार सामान्यतया खाना खाने की सामान्य स्तर की थाली के समान ही होता है। थाली की मोटाई खाना खाने की थाली से थोड़ी ज्यादा तथा इसका वजन भी ज्यादा होता है।

इसके बजाने के लिए थाली को भूमि पर सीधा रखते हैं तथा बजाने के लिए एक छड़ी से थाली पर प्रहार कर ध्वनि उत्पन्न की जाती है। थाली का वादन मात्र लय रूप में किया जाता है जैसे हाथ से ताली बजाते हैं वैसे ही इसका कार्य है। सिरमौर जनपद् में थाली का वादन अधिकतर गुगापीर के गीतों के साथ किया जाता है।

चिमटा

चिमटा घन वाद्यों की श्रेणी का वाद्य है। इस वाद्य की प्राचीनता का कोई भी प्रमाणिक तथ्य मौजूद नहीं है। वास्तव में रसोई घर में प्रयुक्त चिमटा का ही परिष्कृत रूप इसे माना जाना शायद तर्क संगत है। इसी चिमटे को देखकर मनुष्य ने वादन करने के लिए चिमटे का पुनः निर्माण किया होगा।

चिमटा वाद्य का निर्माण मुख्य रूप से लोहा पीतल तथा ताम्बा आदि धातुओं से किया जाता है। धातु की किसी लम्बी छड़ को गर्म कर के हथौड़े से पीटकर निश्चित आकार दिया

जाता है। इसके एक छोर में छोटा सा गोलाकार देकर उसमें लोहे के मोटे तार का एक कड़ा लगाया जाता है तथा खुले मुंह की तरफ के दोनों भागों में लोहे की कीलों की सहायता से धातु की पतली–पतली एवं गोलाकार पतियां कील के साथ लगाई जाती है।

चिमटा वाद्य का वादन इसकी दोनों समान भुजाओं को आपस में टकराने व साथ में पृष्ठ भाग में जहां धातु का कड़ा लगा रहता है, जो इसकी लय के साथ–साथ इसकी ध्वनि विशेष की सृष्टि होती तथा यह कर्ण प्रिय वातावरण का निर्माण करती है।

घड़ा

घड़ा वाद्य लोक संस्कृति का सबसे प्राचीन वाद्य है इस वाद्य का प्रचार एवं प्रसार उत्तरी भारतीय संगीत की अपेक्षा कर्नाटका (दक्षिणी भारतीय) संगीत में अत्यधिक है। दक्षिणी भारत में इसे 'घट्टम्' के नाम से पुकारते हैं।

घड़ा वाद्य मृदा निर्मित वाद्य है। जिसका निर्माण घड़ों के निर्माणकर्ता कुम्भकार द्वारा किया जाता है। इसका आकार एवं बनावट सामान्य घड़े के बराबर होता है। चिकनी मिट्टी को कूट–कूटकर बिल्कुल बारीक कर लिया जाता है फिर इसे छानकर इसमें रेत के कण मिलाकर पानी डालकर मिट्टी को तैयार कर घड़े का आकार दिया जाता है फिर इसे सुखाकर भठ्ठी में डालकर ईंट की तरह पक्का किया जाता है। इसके मुख का व्यास पांच इंच के लगभग रखा जाता है।

वादन क्रिया के लिए घड़े को गोदी में रखा जाता है और दोनों हाथों की उंगलियों और अंगुठे में लोहे के छल्ले पहने जाते हैं। इसके मुख पर एक हाथ से प्रहार किया जाता है जो भौं ऽऽऽ– भौं ऽऽऽऽ की तथा दूसरे हाथ से टिक, टिक, टिक, टिकटिक टिक टिक, की ध्वनियों की उत्पति होती है। इसका क्रमशः प्रयोग सिरमौर जनपद् में ढोलक तथा खंजरी वाद्य के साथ गीह नृत्य की संगत के लिए किया जाता है। इस वाद्य के वादन का प्रचार बहुत ही कम है। इसकी ध्वनि निकास प्रक्रिया वादक की कुशलता पर निर्भर करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

कंवर, रणजौर सिंह, सिरमौर रियासत का इतिहास, हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला, 2007।

गौतम, खुशी, राम सिरमौरी लोक–साहित्य हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला, 1992।

गर्ग, लक्ष्मी नारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0, 1989।

जस्टा, हरिराम, हिमाचल प्रदेश के लोक नृत्य, विकास आर्ट प्रिंटर्स, सहादरा दिल्ली, 1978।

ठाकुर, हरदीप, देव भूमि हिमाचल–प्रदेश, जे0 एम0 डी0 पब्लिशर्ज़, समरहिल, शिमला 2009।

मिश्र, डॉ0 लालमणी, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, उ0प्र0, 1973।

शर्मा, डॉ0 रूप कुमार, सिरमौर दर्पण हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला, 1991।

शुक्ल, डॉ0 हीरा लाल, आदीवासी संगीत, मध्य प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1986।